Vol. 5, Issue: 4, April: 2017
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

वैदिक कालीन संगीत में स्वरों का क्रमिक विकास

डॉ. महेश चन्द्र पाण्डे
असिस्टेंट प्रोफेसर ,संगीत विभाग
एम. बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हल्द्वानी उत्तराखण्ड

१. प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही संगीत में दो धाराओं का प्रवाह रहा है। एक अभिजात संगीत, जो विशिष्ट नियमों में बद्ध होकर प्रयुक्त किया जाता है तथा दूसरा लोक–रूचि अथवा लोक रंजन के हेतु प्रयुक्त किया जाने वाला स्वच्छन्द संगीत। प्राचीन वैदिक काल में भी गान की दो भिन्न–भिन्न धाराएँ अथवा शैलियाँ विद्यमान होने के संकेत प्राप्त होते हैं– सुसंस्कृत वैदिक संगीत तथा सामान्य जन में प्रचलित लोक संगीत। वैदिक संगीत के अन्तर्गत साम संगीत प्रतिष्ठित था जो साम–संहिता पर आधारित था। लोक संगीत में गाथाओं का गान किया जाता था जिसका प्रयोजन मनोरंजन रहा है।

२.स्वर

वैदिक कालीन ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं व अनेक अन्य ऋचाओं को गेय रूप प्रदान कर सामवेद यमयें संग्रहीत किया गया है जिनका तत्कालीन वैदिक संगीत में गान किया जाता था। सामायन्यतया यही गान **'साम–गान'** कहा जाता है। सामवेद में संकलित उक्त ऋचाओं के दो मुख्य भाग हैंः आर्चिक तथा गान। **'आर्चिक'** भाग में ऋचाओं को केवल संग्रहित किया गया है जिनके आधार पर सामगान किया जाता है, किन्तु **'गान'** भाग के अन्तर्गत आर्चिक भाग में संग्रहीत ऋचाओं को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर एवं गेय रूप में प्रदान कर संकलित किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि सामवेद का 'गान' भाग ही वास्तविक **साम है।**

३.वैदिक स्वर

प्राचीन वैदिक परम्पराओं की सुरक्षा के लिए रचे गए सभी ' शिक्षा ग्रन्थों' में वेदों एवं उनके गायन से संबधित–वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम तथा सन्तान विषयों का शास्त्रोचित रीति से उल्लेख किया गया है। परन्तु नारदीय शिक्षा ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इस ग्रन्थ में केवल वैदिक शाखाओं में प्रयुक्त वैदिक संगीत पर ही नहीं अपितु लौकिक संगीत पर भी विस्तृत एवं विशद वर्णन प्राप्त होते हैं।[1] इस ग्रन्थ में संगीत के आधारभूत तत्व – **'स्वर'** के दो भिन्न–भिन्न रूपों के उल्लेख प्राप्त होते हैं –

1 वैदिक स्वर तथा 2. लौकिक स्वर। अतः इस अध्याय के प्रथम खण्ड में वैदिक स्वरों पर अध्ययन किया गया है, तथा द्वितीय खण्ड में, नारदीय शिक्षा में वर्णित लौकिक संगीत के स्वरों पर विचार किया जाएगा। अनेक विषयों के समान ही नारदीय शिक्षा ग्रन्थ में 'वैदिक स्वरो' के विषय में भी चर्चा की गई है। ये स्वर, आर्चिक के त्रिस्वरों–उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित से पृथक् हैं तथा संख्या में भी उनसे अधिक, सात हैं। इन वैदिक स्वरों का, लौकिक स्वरों से पृथक् वैदिक संगीत में अस्तित्व विद्यमान रहा है। इन स्वरों के विषय में ध्यान देने योग्य तथ्य है कि यद्यपि शिक्षाकार ने उदात्तादि के साथ, लौकिक स्वरों को सम्बद्ध माना है तथापि उन्होंने वैदिक संगीत के सप्त स्वरों को, आर्चिक के त्रिस्वरों–उदात्तादि से संबधित करने का प्रयास नहीं किया है। प्राचीन साम–गायकों द्वारा गाए जाने वाले सप्त वैदिक स्वरों का नामोल्लेख करते हुए शिक्षाकार ने कहा है –

प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोऽथ चतुर्थकः।
मन्द्रः कुष्टो ह्मतिस्वारः एतान् कुर्वन्ति सामगाः।।[2]

अर्थात् सामगायक प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्ट तथा अतिस्वार (स्वरों) में गान करते हैं। वैदिक संगीत में व्यावहारिक रूप से इन सप्त स्वरों का क्रम–क्रुष्ट, प्रथम, द्वितय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार रहा है, ऐसा प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से प्रतीत होता है। इस वैदिक स्वर–सप्तक का अधिक अध्ययन करने से बोध होता है कि यह स्वर–सप्तक अवरोही क्रम में विद्यमान रही है। वैदिक गान की विभिन्न परम्पराओं के अनुयायी अपने–अपने गान में द्विस्वर, त्रिस्वर, चतुःस्वर से लेकर सम्पूर्ण सप्त स्वर प्रयुक्त करते थे। इस तथ्य के कुछ प्रमाण नारदीय शिक्षा में ही प्राप्त हो जाते हैं।[3]

४.वैदिक स्वरों का विकास

वैदिक संगीत के विषय में यह सामान्य विचार है कि इसके अंतर्गत तीन स्वरों का प्रयोग निहित है। इसलिए वेद शास्त्र में त्रिस्वर गान के लिए **'सामिक'** संज्ञा भी प्राप्त होती है। सामवेद की आदिम प्रति में भी साम गान तीन स्वर युक्त दर्शाया गया है। कुछ विद्वारों का मत है कि शीघ्र ही वैदिक संगीत में एक स्वर और प्राप्त हो गया तथा गायन कार्य चार स्वरों में होने लगा। इस तथ्य से संबधित प्रमाण नारदीय शिक्षा में भी प्राप्त होते हैं।

शिक्षाकार ने नारदीय शिक्षा में वैदिक संगीत की चार रीतियों का वर्णन किया है– आर्चिक, गाथिक, सामिक तथा स्वरांतर।[4] आर्चिक एक स्वर युक्त गान है, गाथिक दो स्वर युक्त, सामिक तीन स्वर युक्त तथा स्वरान्तर चार स्वर युक्त गान है। अतः विद्वानों का मत है कि वैदिक संगीत की प्राथमिक अवस्था में तीन या चार स्वरों का प्रयोग रहा होगा।

वैदिक स्वरों की संज्ञाओं से संकेत प्राप्त होत है वैदिक संगीत के सर्वप्रथम प्रचार में आने वाले तीन या चार स्वर, क्रमशः **प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ** नामक वैदिक स्वर रहे होंगे तथा कालान्तर में इन्हीं चार स्वरों में विकसित होकर वैदिक स्वर–ग्राम, सप्त स्वर युक्त हो गया होगा। आधुनिक विद्वान ठाकुर जयदेव सिंह ने इसी तथ्य को प्रकाशित किया है। उनके अनुसार साम सप्तक के चार स्वरों की संज्ञाएँ संख्यात्मक तथा तीन की वर्णनात्मक हैं। उन्होंने मत प्रकट किया है कि संख्यात्मक स्वरों से संकेत प्राप्त होता है कि सामगायकों ने सर्वप्रथम चार स्वरों को पहचान कर उन्हें अवरोही क्रम में स्थापित किया तथा उन्हें संख्यात्मक ना दिए– प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ।[5] इन चार स्वरों के अतिरिक्त शेष तीन गुणवाचक स्वरों के विषय में डा. ठाकुर का कथन है कि जब पूर्वपरिचित चार यमों (स्वरों) से नीचें का यम साम गायकों को मिला तो उसे उन्होंने **'मन्द्र'** कहा। मन्द्र का अर्थ है 'नीचा'। इसके नीचे भी जब उन्हें एक और स्वर की प्राप्ति हुई तो उसका नाक **'अतिस्वार'** या **'अतिस्वार्य'** रखा।[6] डॉ. ठाकुर के अनुसार अतिस्वार शब्द में 'अति', अन्तिम सीमा को प्रकट करता है। अतः अतिस्वार स्वर वैदिक सप्तक का मन्द्र स्थान में अंतिम स्वर है। डॉ. ठाकुर के अनुसार इन स्वरों के अतिरिक्त एक अन्य स्वर **'क्रुष्ट'** भी प्राप्त हुआ। यह स्वर शेष छः स्वरों से सर्वाधिक ऊँचे स्थान पर स्थित है तथा जोर से (अथवा चिल्लाकर) उच्चारित किया जाता है, अतः 'क्रुष्ट' कहलाया। क्रुष्ट शब्द 'क्रुश' धातु में 'क्त' प्रत्यय लगाने से बना है जिसका अर्थ है चिल्लाना, जोर से आवाज करना।[7]

अन्य आधुनिक विद्वान डॉ. परांजपे ने भी क्रुष्ट, मन्द्र तथा अतिस्वार को इन्हीं रूपों में व्याख्या की है। डॉ. परांजपे ने क्रुष्ट स्वरन को समझाते हुए नारदीय शिक्षा में वर्णित 'विक्रुष्ट' नामक गान–गुण का उल्लेख किया है। उनके अनुसार विक्रुष्ट संज्ञा उच्च स्थान पर उच्चारित स्वर के लिए है। इसी आधार पर डॉ. परांजपे ने 'क्रुष्ट' स्वर को उच्च स्वर माना है। **मन्द्र** स्वर के विषय में डॉ0 परांजपे कहते हैं कि 'मन्द्र' संज्ञा 'स्वर' के अतिरिक्त 'स्थान' के लिए भी प्रयुक्त होती है, अतः मन्द्र स्थान के समान नीचा होने के कारण इसे

'मन्द्र' कहा गया है। डॉ. परांजपे के अनुसार 'अतिस्वार' स्वर के लिए 'अन्त्य' तथा 'नीच' संज्ञाएँ भी प्राप्त होती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि यह वैदिक सप्तक का नीचे की ओर अन्तिम स्वर है।[8]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि वैदिक स्वर नीच से नीचतर स्थान पर स्थित होने के कारण अवरोही क्रम के हैं तथा उनकी प्राप्ति–प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार तथा क्रुष्ट, इस क्रम से हुई जबकि उनका प्रयोगात्मक क्रम–क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वार रहा है।

५.वैदिक सप्तक का विकास

प्राचीन काल में साम गायकों को वैदिक संगीत में प्रयुक्त होने वाले सप्त स्वरों की प्राप्ति कुछ ही काल में नहीं हुई वरन् दीर्घ काल में हुई। वैदिक संगीत में 'साम गान' अन्तर्निहित है। उस काल में त्रिस्वर गान के लिए 'साम' संज्ञा प्राप्त होती है। इससे संकेत प्राप्त होता है कि वैदिक संगीत में तीन स्वरों की प्राप्ति के पश्चात् दीर्घ काल तक स्थायित्व आ गया था। कालान्तर में वैदिक सप्तक के विकास के प्रमाण पुनः परिलक्षित होते हैं। इस विषय से सम्बद्ध संकेत नारदीय शिक्षा ग्रन्थ में प्राप्त हो जाते हैं।

आर्चिकं गाथिकं चैव सामिकं च स्वरान्तरम।।
कृतान्ते स्वर शास्त्राणां प्रयोक्तव्यं विशेषतः।।[9]

अर्थात् आर्चिक, गाथिक, सामिक तथा स्वरांतर का विशेष रूप से स्वरशास्त्र के अन्त में प्रयोग किया जाता है। आर्चिक, गाथिक व सामिक को स्पष्ट करते हुए शिक्षाकार मत प्रकट करते हैं–

एकान्तरा स्वरो ह्रयृक्षु गाथासुद्वयन्तरः स्वरः।
समसुत्र्यन्तरं विद्यादेतावत् स्वरतोर्ऽन्तरम्।।[10]

तात्पर्य यह कि ऋक् में एक स्वर का, गाथा में दो स्वरों का तथा साम में तीन स्वरों का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि पहले कथन में शिक्षाकार ने 'स्वरान्तर' का भी नामोल्लेख किया है तथापि उन्होंने उसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया है। इस तथ्य से संकेत प्राप्त होता है कि 'स्वरांतर' गान का प्रचार, क्रमशः आर्चिक, गाथिक तथा सामिक के पश्चात् हुआ। आधुनिक विद्वान डॉ0 ठाकुर जयदेव सिंह ने संगीत रत्नाकर ग्रन्थ पर सिंहभूपाल की टीका के माध्यम से 'स्वरान्तर' को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है–

संगीत रत्नाकर की सुधाकर टीका में सिंहभूपाल ने स्पष्ट कहा है–'चतुःस्वरः स्वरान्तरः (पृ. 121 अड्यार सं.) अर्थात् 'स्वरान्तर' चार स्वर का होता था।[11] इस प्रकार ज्ञात होता है कि साम संगीत में सप्तक का विकास एक से दो, दो से तीन तथा तीन से चार स्वरों में, इस क्रम से हुआ। पूर्व के अध्ययन से ही ज्ञात हो चुका है कि वैदिक काल में ही वैदिक सप्तक पूर्ण सप्त स्वर युक्त हो चुका था किन्तु इसके विकास क्रम के प्रमाण नारदीय शिक्षा में प्राप्त नहीं होते। नारदीय शिक्षा में पांच, छः अथवा सात स्वर युक्त गान के लिए संज्ञाएँ प्राप्त नहीं होतीं जबकि परवर्ती, प्रायः सभी ग्रन्थों में पांच स्वर युक्त गान के लिए **'औडव' या 'औडुव',** छ' स्वर युक्त गान के **'षाडव'** तथा सप्त स्वर युक्त गान के लिए संपूर्ण संज्ञा प्राप्त होती है। इस तथ्य से संकेत प्राप्त होते हैं कि वैदिक सप्त स्वरों का प्रयोग उनके व्यक्तिगत अथव एकल रूप में होता था न कि किन्हीं विशिष्ट स्वरावलियों अथवा स्वर समूहों के रूप में।

६.वैदिक स्वरोल्लेख

नारदीय शिक्षा ग्रन्थ में वैदिक स्वरों से सम्बद्ध, कुछ अन्य उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। शिक्षाकार ने वैदिक स्वरों की शरीरगत स्थानों में स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है –

क्रुष्टस्य मूर्द्धनि स्थानं ललाटे प्रथमस्य तु।

भ्रुवोर्मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्य तु कर्णयोः।।
कण्ठस्थानं तु तुर्यस्य मन्द्रस्योरसि तूच्यते।
अतिस्वारस्य नीचस्य हृदि स्थानं विधीयते।।[12]

सिर में क्रुष्ट स्वर का स्थान है, ललाट में प्रथम स्वर का, दानों भवों के मध्य में द्वितीय का, तृतीय का कानों में, कण्ठ में चतुर्थ का, मन्द्र का वक्षस्थल में तथा अतिस्वार नामक नीचे के स्वर का हृदि में स्थान है। नारदीय शिक्षा ग्रन्थ में वैदिक स्वरों के माध्यम से विभिन्न जीवों की उत्पत्ति अथवा सम्पुष्टि होने का भी वर्णन किया गया है।

क्रुष्टेन देवा जीवन्ति प्रथमेन तु मानुषाः।
पशवस्तु द्वितीयेन गन्धर्वाप्सरसस्त्वनु।।
अण्डजाः पितरश्चैव चतुर्थस्वरजीविनः।
मन्द्रं चैवोपजीवन्ति पिशाचासुरराक्षसाः।।
अतिस्वारेण नीचेन जगत्स्थावरजंगमम्।
सर्वाणि खलु भूतानि धार्यंते सामिकैः स्वरैः।।[13]

अर्थात् क्रुष्ट से देवता जीते हैं। प्रथम से मनुष्य, पशु द्वितीय से, गन्धर्व एवं अप्साराएँ अगल (तृतीय) से, अण्डज (अण्ड से उत्पन्न होने वाले जीव) और पितर गण चतुर्थ स्वर से जीते हैं। मन्द्र से पिशाच, असुर एवं राक्षस जीते हैं। नीच स्वर (नीचे के स्थान का) अतिस्वार से स्थावर एवं जड़्गम जगत जीते हैं। सभी भूत (प्राणी) साम गायकों के स्वरों को धारण करते हैं। नारदीय शिक्षा ग्रन्थ में क्रुष्टादि वैदिक स्वरों की 'श्रुति–जातियों' का भी वर्णन प्राप्त होता है –

दीप्ता मन्द्रे द्वितीये च प्र चतुर्थे तथैवतु।
अतिस्वारे तृतीये च क्रुष्टेतु करूणाश्रुतिः।।[14]

अर्थात् मन्द्र, द्वितीय, प्र (प्रथम) और चतुर्थ (स्वरों) में दीप्ता तथा अतिस्वार तृतीया और क्रुष्ट में करूणा श्रुति है। शिक्षाकार ने द्वितीय स्वर की अन्य तीन श्रुतियों का भी उल्लेख किया है –

श्रुतयोऽन्या द्वितीयस्य मृदुमध्यायताः स्मृताः।
तसामपि तु वक्ष्यामि लक्षणानि पृथक् पृथक्।।[15]

अर्थात् द्वितीय की अन्य श्रुतियाँ मृदु, मध्या तथा आयता हैं। इसके पश्चात् शिक्षाकार ने द्वितीय स्वर में श्रुति की भिन्नता होने का कारण भी समझाया है। नारदीय शिक्षा में वैदिक स्वरों से संबधित यही विवरण प्राप्त होते हैं। नारदीय शिक्षा ग्रंथ में इन स्वरों के शास्त्रानुकूल प्रयोग पर, विशेष ध्यान देने के लिए कहा गया है तथा ऐसा न करने पर अनिष्ट होता है, ऐसा विचार व्यक्त किया गया है –

ऋक् सामयजुरड़्गानि ये यज्ञेषु प्रयुञजते।
अविज्ञानाद्धि शास्त्राणां तेषां भवति विस्वरः।।
मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमाने हिनस्ति यथेन्द्र शत्रुः स्वरताऽपराधात्।।
प्रहीणः स्वरवर्णाभ्यां यो विमन्त्रः प्रयुज्यते।
यज्ञेषु यजमानस्य रूषत्यायुः प्रजां पशून्।।[16]

अर्थात् जो शास्त्रों को न जानते हुए यज्ञों में ऋक्, साम तथा यजुः के अंगों का प्रयोग करते हैं वे विस्वर (स्वर से अलग) हो जाते हैं। जो मंत्रहीन (गायकं), स्वर और वर्ण का मिथ्या (अनुचित) प्रयोग करता है या

उनका अर्थ नहीं कहता, वह वज्र के समान वाणी वाला (गायक) यजमान की हत्या (अहित) करता है जैसे इन्द्र का वज्र इन्द्र के शत्रुओं का नाश करता है। जो (गायक) स्वर तथा वर्णो से हीन गान अथवा गलत मन्त्रों का यज्ञों में प्रयोग करता है वह यजमान की आयु, प्रजा तथा पशुधन (सम्पत्ति) का क्षय करता है। इस प्रकार नारदीय शिक्षा में साम गान के अन्तर्गत स्वरों के उचित प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है। वैदिक स्वरों से संबधित, नारदीय शिक्षा में दिए गए तथ्यों को निम्न तालिका से समझा जा सकता है –

	क्रुष्ट	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	मन्द्र	अतिस्वार
शरीरगत स्थान	मूर्धन (सिर)	ललाट	भूमध्य	कर्ण मध्य	कण्ठ	उर	हृदि
उपजीव्य जीव	देवगण	मनुष्य गण	पशु	गन्धर्व व अप्सराएँ	अडंज व पितर	पिशाच असुर व राक्षस	स्थावर व जड़्गम
श्रुति जाति	करूणा	दीप्ता	दीप्ता, आयता, मृदु व मध्या	दीप्ता	दीप्ता	दीप्ता	दीप्ता

७.सारांश

वैदिक संगीत भारतीय संगीत की प्राचीनतम परंपरा है, जिसका उल्लेख वेदों में मिलता है, विशेष रूप से सामवेद में। सामवेद को भारतीय संगीत का आधार माना जाता है क्योंकि इसमें मन्त्रों का गायन स्वरबद्ध रूप में किया जाता था।वैदिक संगीत में स्वरों का महत्वपूर्ण स्थान है, जो कि नाद और ब्रह्मांडीय ध्वनियों से उत्पन्न माने जाते हैं। इन स्वरों का उपयोग देवताओं की स्तुति और यज्ञ अनुष्ठानों में किया जाता था। वैदिक संगीत में स्वरों का उल्लेख मुख्य रूप से सात स्वरों के रूप में मिलता है, जो आज के शास्त्रीय संगीत के सात स्वरों (स, रे, ग, म, प, ध, नि) के पूर्ववर्ती रूप हैं। वैदिक संगीत में ''ऊदत्त'', ''अनूदत्त'', और ''स्वरित'' तीन प्रमुख स्वर थे, जिनका उपयोग वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में किया जाता था।ऊदात्तः उच्च स्वर ,अनूदात्तः निम्न स्वर, स्वरितः मध्य स्वर, जो कि ऊदात्त और अनूदात्त के बीच का होता है।

सामवेद के मंत्रों को विशेष स्वरों में गाया जाता था, जिन्हें ''सामगान'' कहा जाता है। इन सामगानों के माध्यम से स्वरों की संरचना और ताल का विकास हुआ। सामवेद के स्वर भारतीय संगीत के मौलिक स्वर–शब्दों के रूप में विकसित हुए और बाद में इन्हीं स्वरों से शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ। वैदिक संगीत और स्वरों का प्रभाव आज भी हिंदुस्तानी और कर्नाटक शास्त्रीय संगीत में देखा जा सकता है। वैदिक स्वरों ने भारतीय संगीत की तान प्रणाली, रागों और लयबद्ध संरचनाओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वैदिक स्वरों के प्रयोग से संगीत में शांति, ध्यान और आध्यात्मिक अनुभव की भावना आती है, जो आज भी ध्यान और भक्ति संगीत में विशेष रूप से महसूस की जाती है।

वैदिक मन्त्रों का उच्चारण एक विशिष्ट स्वर–संरचना के साथ होता था, जो उन्हें संगीत का रूप देता था। हर मन्त्र का स्वर–ताल उसके अर्थ और शक्ति को बढ़ाने में सहायक होता था। मन्त्रों के उच्चारण में स्वरों की शुद्धता और क्रम का विशेष ध्यान रखा जाता था, जिससे मन्त्र की ऊर्जा और उसका प्रभाव अधिक प्रभावी होता था। वैदिक संगीत का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं था, बल्कि यह आध्यात्मिक अनुभव का माध्यम था। स्वरों के माध्यम से आध्यात्मिक उन्नति और मन की शुद्धि प्राप्त की जाती थी। वैदिक स्वरों को ब्रह्मांडीय ध्वनियों से जोड़ा जाता है, जो कि नाद ब्रह्म की अवधारणा पर आधारित हैं। यह माना जाता है कि वैदिक संगीत के स्वरों से पूरे ब्रह्मांड में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। आधुनिक युग में वैदिक संगीत और स्वरों की प्रासंगिकता बनी हुई है, लेकिन इसे संरक्षित करने की चुनौती भी है। वैदिक स्वरों के अध्ययन और अनुसंधान की कमी के कारण यह परंपरा धीरे–धीरे लुप्त हो रही है।

Vol. 5, Issue: 4, April: 2017
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

संदर्भ ग्रन्थ

1.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.8, श्लोक. 3 पृ.–36
2.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.1, श्लोक.12 पृ.–5
3.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.1, श्लोक.11–13 पृ.–5,6
4.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.1, श्लोक.2 पृ.–2
5.भारतीय संगीत का इतिहार–डॉ. ठाकुर जयदेव सिंह अ.4 पृ. 46
6.भारतीय संगीत का इतिहार–डॉ. ठाकुर जयदेव सिंह अ.4 पृ. 46–47
7.भारतीय संगीत का इतिहार–डॉ. ठाकुर जयदेव सिंह अ.4 पृ. 47
8.भारतीय संगीत का इतिहार–डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे अ.2 पृ. 91–92
9.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.1, श्लोक.2 पृ.–2
10.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.1, श्लोक.3 पृ.–2
11.भारतीय संगीत का इतिहार–डॉ. ठाकुर जयदेव सिंह अ.4 पृ. 46
12.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.7, श्लोक.1–2 पृ.–31
13.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.7, श्लोक. 06–8 पृ.–32
14.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.7, श्लोक.10 पृ.–33
15.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.7, श्लोक.11 पृ.–33
16.नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.1, श्लोक.4–6 पृ.–3–4